।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

वर्ष- २१ मई-जुलाई सन्- २००८	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अंक- ३ रामानुजाब्द- ९९२ त्रैमासिक प्रकाशन

सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु। दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्।
शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम्। ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्त्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः।।

प्रथमतः शरीर, सन्तान आदि में मन की अनासक्ति सीखें, तदनन्तर भगवद्-भक्तों से प्रेम करना सीखें। इसके पश्चात् प्राणियों के प्रति यथायोग्य दया, मैत्री और विनय की निष्कपट भाव से शिक्षा ग्रहण करें। मिट्टी-जल आदि से बाह्य शरीर की पवित्रता, छल-कपट आदि के त्याग से भीतर की पवित्रता, अपने धर्म का अनुष्ठान, सहनशक्ति, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, तथा शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में हर्ष-विषाद से रहित होना सीखें।

वैदिक-वाणी

सत्यमेव जयते

कोई भी व्यक्ति यह विचार कर देखे तो वह निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि जगत् में धर्म ही एक ऐसा साधन है जिससे समस्त मानव समाज सन्मार्ग से चलकर शान्तिपूर्वक रह सकता है। 'धारणाद्धर्म-मित्याहुः' अर्थात् विश्व को धारण करने की शक्ति धर्म में ही है। धर्म अनेक प्रकार के हैं, उनमें सत्य रूप धर्म सर्वश्रेष्ठ है। वेद का आदेश है 'सत्यं वद' सत्य बोलो। सत्य का पालन में कभी भी प्रमाद न करे—'सत्यात्नप्रमदितव्यम्' 'सत्येन लोकाञ्जयति' सत्य पालन करने वाला समस्त लोक पर विजय प्राप्त कर लेता है। श्रीराम ने सत्य के प्रभाव से ही जटायु आदि को मोक्ष दिया था। जिस श्रीराम-चरिमानस के प्रति मानव समाज आस्थावान बना है, वह भी सत्य को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म मानता है।

सत्यमूल सब सुकृत सुहाय।
वेदपुराण विदित मनु गाय।।

श्रीरामचरितमानस यह भी कहता है कि असत्य से बढ़कर दूसरा पाप नहीं है अर्थात् सबसे बड़ा पाप है असत्य बोलना। 'नहि असत्य सम पातक-पुञ्जा'। शुक्राचार्य ने वलि को उपदेश करते हुए कहा है कि निम्न जगह असत्य भाषण में दोष नहीं होता है—१. स्त्री को प्रसन्न करने के लिए हास परिहास में, २. कन्या के विवाह में, ३. जहाँ समस्त जीविका नष्ट हो रही है उसकी रक्षा में, ४. प्राण सङ्कट में आने पर जान बचाने के लिए और ५. जहाँ गौ ब्राह्मण की हत्या हो रही हो, से बचाने के लिए; परन्तु बलि सत्यमार्ग से विचलित नहीं हुए। उसने शुक्राचार्य से कहा कि पृथ्वी का वचन है असत्य से बढ़कर अधर्म नहीं है। मैं सब कुछ सहने में समर्थ हूँ; परन्तु झुठे मनुष्य का भार मुझसे नहीं सहा जाता। 'सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम्'। अत एव वर्तमान समय में असत्यवादियों की भार से पृथ्वी को कम्पन हो रहा है, जो आज राजा भू-कम्प के रूप में देखने और सुनने को मिल रहा है। विषम परिस्थिति आने पर मानव असत्य से कैसे बच सकता है? इसके सम्बन्ध में उतथ्य मुनि का विलक्षण प्रसङ्ग देवी भागवत में मिलता है—

उतथ्य मुनि सत्य बोलने का व्रत पालन करते हैं, यह बात सबलोग जानते थे। सारी जनता में उनका यश फैल गया कि वे सत्यव्रत हैं, कभी भी इनके मुख से मिथ्या वाणी नहीं निकलती।

एक महान् मूर्ख जंगली आदमी शिकार खेलते हुए वहाँ आ पहुँचा। उसके हाथ में धनुष-बाण था। उस घोर वन में शिकार करते समय यमराज के समान वह भयङ्कर जान पड़ता था। उसकी शकल-सूरत बड़ी डरावनी थी। हिंसा-वृत्ति में वह बड़ा ही निपुण था। उस धनुषधारी किरात के बाण से एक सूअर बिंध गया था। अत्यन्त भयभीत होकर भागता हुआ वह सूअर बड़ी शीघ्रता से उतथ्य मुनि के पास पहुँचा। जब वह आश्रम में आया, तब उस सूअर का शरीर थर-थर काँप रहा था। उसकी देह रूधिर से लथपथ हो गया था। दया का वह महान् पात्र हो गया था। उस दीन-हीन पशु पर उतथ्य मुनि की दृष्टि पड़ गयी। रूधिर से भींगे शरीर वाला वह सूअर मुनि के सामने से ही दौड़ा जा रहा था। अभी तुरन्त उसे चोट लगी थी। दया के उद्रेक से उतथ्य मुनि काँप उठे। फिर तो उनके मुख से देवी का सारस्वत-

भारतीय संस्कृति की सुरक्षा पर ध्यान दें

भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं आचार्य परम्परा को सुरक्षित रखना मानव का पुनीत कर्त्तव्य होता है। समस्त ब्रह्माण्ड परमात्मा का शरीर है। भारतवर्ष उनका हृदय माना गया है। इसलिए भगवान ने भारत के अतिरिक्त किसी भी देश में अवतार नहीं लिया। उनका एकमात्र स्थान प्रियभारतवर्ष ही है। जिसे आर्यावर्त भी कहते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान का सर्वप्रथम सुप्रभात भारतवर्ष में ही हुआ था। शान्ति तथा मोक्ष का मार्ग भारतवर्ष में प्रशस्त होता है। इस देश में सदा भगवत कथा-सुधा की वर्षा होती रहती है। परमसाधक सच्चे सन्त, महात्मा इस भारत वर्ष में ही रहकर भगवत्स्वरूप का साक्षात्कार करते रहे हैं तथा अभी भी कर रहे हैं। भौतिक विकास के लिए चरम सीमा पर पहुँचे हुए विदेशी परम शान्ति के लिए इसी भारतवर्ष में साधना करते हुए देखे जा रहे हैं। उपनिषद्, गीता, श्रीमद्भागवत तथा रामायण आदि सद्ग्रन्थों का सदुपदेश यहीं प्राप्त होता है। जो बड़े-बड़े यज्ञ, व्रत और दानादि करके तुच्छ स्वर्ग का अधिकार प्राप्त करता है, उससे क्या लाभ? भोगों से इन्द्रियों की स्मृति शक्ति क्षीण हो जाती है, जहाँ भोग बाहुल्य रहता है, वहाँ भगवान के चरण कमल का स्मरण होता ही नहीं। जिन ब्रह्मादि लोकों में एक-एक कल्प की आयु होती है, वहाँ के लोगों को फिर संसार चक्र में लौटना पड़ता है; परन्तु भारतवर्ष में थोड़ी आयु वाले मानव अपने कर्म को भगवान के लिए समर्पण करके अभयपद वैकुण्ठ प्राप्त कर लेते हैं। अत एव सत्पुरुषों की माँग है जहाँ भगवत्कथा की अमृतमयी सरिता नहीं बहती, जहाँ भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ नृत्य, गीतादि के साथ बड़े समारोह से भगवान यज्ञपुरुष की पूजा-अर्चना नहीं होती, वह ब्रह्मा, इन्द्र आदि का लोक में भी रहने योग्य नहीं है।

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥

(भा०-५/१९/२४)

किसी भी देश की संस्कृति एवं सम्यता का मूलाधार वहाँ का साहित्य होता है। बुद्ध ने हमारी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का आधारभूत वेदों, धर्मशास्त्रों, पुराणों एवं इतिहासों से जनता को दूर हटाकर शून्यवाद का प्रचार-प्रसार किया। सातवीं शताब्दी में स्वामी शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने वेदादि धर्मशास्त्रों एवं पुराणों को सत्य मानकर एक ब्रह्म ही सत्य है ऐसा कहकर एकवाद का प्रचार किया। ग्यारहवीं शताब्दी में शेषावतार स्वामी रामानुजाचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। उन्होंने वेदादि शास्त्रों की सत्ता को स्वीकार कर उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्रों पर भाष्य लिखकर ब्रह्म, जीव और माया इन तीन तत्त्व को यथार्थ बतलाया। उन्होंने जीव को ब्रह्म का दास तथा माया को परिणामी कहा है। ब्रह्म प्राप्ति का साधन भक्ति को माना है।

अंग्रेजों तथा मुसलमानों ने भारत में राज्य किया। अंग्रेजों ने हमारे वेदों में वैज्ञानिक चीजों को देखा उन्हें विश्वास हो गया कि वेदों से बहुत वैज्ञानिक चीजों का आविष्कार किया जा सकता है। अतः वे वेदों को अपने देश में ले गये। मुसलमानों ने भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा आचार्य परम्परा को नष्ट करने के लिए सर्वप्रथम हमारे वेदादि शास्त्रों

अभ्यास से भगवत्स्वरूप का दर्शन

विवेकशील प्राणी मानव को तत्त्वज्ञान का होना नितान्त आवश्यक है। उपनिषद्, गीता एवं ब्रह्मसूत्र आदि सद्शास्त्र ही तत्त्व के निर्णायक हैं। ये तीन तत्त्व बतलाते हैं। ब्रह्म, जीव और माया। इनमें ब्रह्म और जीवात्मा ये दोनों इन्द्रियातीत हैं। प्राकृत नेत्रादि से हम इनका निर्णय नहीं कर सकते हैं। जो प्राकृत नेत्र का विषय होता है, उसी का निर्णय इन्द्रियों के द्वारा किया जा सकता है। परमात्मा और जीवात्मा के स्वरूप का निर्णय शास्त्र से ही होता है। अत एव व्यास जी ने कहा है 'शास्त्रयोनित्वात्' अर्थात् ब्रह्म में शास्त्र ही प्रमाण है। इस ब्रह्मसूत्र की व्याख्या सभी आचार्यों ने ऐसी ही की है। शास्त्रों द्वारा परमात्मा और जीवात्मा के स्वरूप को समझकर उसे हृदय में बैठाने के लिए अभ्यास किया जाता है। बहिर्मुखी इन्द्रियाँ जब अन्तर्मुखी वन जाती हैं तब उनका साक्षात्कार होता है। कौसल्या-दशरथ, देवकी-वसुदेव आदि ने पूर्व जन्म में इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाकर तप किया, जिससे भगवान विष्णु प्रकट होकर उन्हें वरदान दिये थे। नारद जी ध्रुव को भगवान के स्वरूप को बतलाकर अन्तर्मुखी बनाया और प्रह्लाद गर्भस्थ होकर ही नारद के उपदेश से अन्तर्मुखी बन गये थे। सारी इन्द्रियाँ बाह्य विषयों की ओर दौड़ती हैं। इसलिए उनसे आत्मा और परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता 'पराञ्चिखानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्'। आदिकाल की वासनावश जीव बाह्य भोगों की ओर दौड़ता है। विषयभोग के लिए अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती है। अनेक जन्म से भोग की वासना प्रबल होने के कारण विना प्रशिक्षण के विषयभोग में स्वयं प्रवृत्ति हो जाती है; परन्तु आत्मदर्शन तथा भगवद् दर्शन की वासना का जीवों में अभाव है। अत एव उसके लिए अभ्यास की आवश्यकता होती है। भगवान ने कहीं भी विषयभोग के लिए अभ्यास करने को नहीं कहा; बल्कि भोग को नियन्त्रित करने के लिए उसका नियम बतलाया है; परन्तु आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को साक्षात्कार के लिए अभ्यास करने के लिए कहा है। 'अभ्यासे न तु कौन्तेय वैराग्ये न च गृह्यते' (गीता अ०-६)।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना ।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन ।।

(गी०अ० ८)

अभ्यास का अर्थ है बार-बार अनुशीलन करना उससे वे हृदय में स्थित हो जाते हैं।

यद्यपि अन्तर्यामी रूप में भगवान सबके हृदय में रहकर प्रेरित करते रहते हैं—'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्' ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृददेशोऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानां यन्त्रारुठानि मायया ।।

यद्यपि वेदादि प्रमाण हृदय में अन्तर्यामी रूप से ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करते हैं, तथापि जब जीव उनके स्वरूप का बार-बार स्मरण करते हैं तब भगवान उसके हृदय में साकार रूप में स्थित होते हैं। 'अङ्गुष्ठमात्रं रवितुल्यतेजः सदाजनानां हृदि सन्निविष्टः'। भक्त के सदा स्मरण करने पर सूर्य के समान परम तेजस्वी भगवान अङ्गुष्ठ के बराबर होकर उसके हृदय में रहते हैं।

भगवान के स्वरूप को हृदय में बैठाने के लिए श्रद्धा और विश्वास के साथ अभ्यास करे। श्रीराम, श्रीकृष्ण और श्रीवेङ्कटेश भगवान विष्णु के ही स्वरूप हैं। अतः इनमें किसी एक रूप के चरण कमल को हृदय में बैठाने का अभ्यास करे। जब

शेष पृ० १४ पर

शङ्का-समाधान

(वैकुण्ठवासी श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज)

जौ जनतेउँ वन बंधु बिछोहू ।
पिता वचन मनतेउँ नहिं ओहु ।।

यह चौपाई लङ्काकाण्ड की है। रावण के साथ युद्ध में लक्ष्मण को मूर्छित देखकर श्रीरामजी कहते हैं कि यदि मैं जानता कि लड़ाई में लखन की मृत्यु होगी, तो पिता की उस वनवास आज्ञा को नहीं मानता।

(प्रश्न)—श्रीरामजी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, यदि पिता की आज्ञा को न मानते तो इन्हें पिता की आज्ञा उल्लङ्घन का दोष लगता और संसार में अपयश के पात्र बनते। पुत्र तीन प्रकार के होते हैं– उत्त, मध्यम और अधम। जो पिता की चेष्टा को देखकर काम करता है वह उत्तम होता है। पिता की आज्ञा देने पर काम करने वाला मध्यम और पिता के कहने पर भी काम नहीं करने वाला अधम होता है। श्रीरामजी उत्तम पुत्र हैं। फिर उन्होंने पिता के वचन को हम नहीं मानते ऐसा क्यों कहा?

(उत्तर)—१. श्रीरामजी को लखनजी में अत्यन्त प्रेम है, उत्कट भ्रातृभाव है, अतः इनको मूर्छित देखकर वे अत्यन्त दुःखी हो पिता की आज्ञापालन से होने वाले सुख, सुयश को अति तुच्छ तथा लखनजी को जीवित रहने से होने वाले सुख को श्रेष्ठ समझकर पिता की वनवास आज्ञा को ठुकरा देना सोचते हैं; क्योंकि वही इस विषय परिस्थिति का जनक है। यह उनमें उचित भ्रातृ व्यवहार है।

२. श्रीरामजी यह सोचते हैं कि हम सबों को वन में आते समय दशरथजी सुमन्त को कहे थे कि हे सुमन्त! इन सबों को चार दिनों में वन दिखाकर लौटा ले आइए। यदि ऐसा मैं जानता कि इस यात्रा में लक्ष्मणजी की मृत्यु हो जायेगी, तो उनकी उस चार दिन की भी आज्ञा को नहीं मानता।

३. मेरा वनवास तो कैकेयी दशरथ जी से वरदान में माँगी थी, लक्ष्मण को बिना कारण हि वन में आये तथा इनकी मृत्यु हुई। यदि यह बात मुझे उस समय सूझ जाती तो साथ आने का लखन के आग्रह को नहीं मानता। **नाथ दास मैं स्वामी तुम तजहुँ तो कहाँ बसाय ।**

४. वन आते समय सीता के वन आने के आग्रह के नहीं स्वीकार करता तो ये सब अनर्थ ही नहीं होता। सभी अनर्थों का कारण तो सीता ही हुई; क्योंकि उसी की बात मानकर मैं मृग लाने गया, उससे अकेली सीता चुरायी गयी, जिससे युद्ध का समय आ गया। यदि सीता साथ नहीं आती तो ये सब कुछ नहीं होता।

५. **सुनहु देव रघुबीर कृपाला ।**
एहि मृग कर अति सुन्दर छाला ।।
सत्यसन्ध प्रभु बधि करि एही ।
आनहुँ चर्म कहति वैदेही ।।

यह जानकी की बात को नहीं मानता तो ये सब अनर्थ नहीं होता। जानकी का मृग लाने की बात लोभाभिभूत अवस्था की है, अतः अमान्य थी; किन्तु मैं नहीं समझा, उसकी बात को मान लिया इसलिए अनर्थ हुआ।

किसी रामयणी का यह भी कहना है कि बाल्यकाल में मेघनाद काक बनकर श्रीरामजी के बल, बुद्धि की परीक्षा लेने गया था, तो रामजी उसको पकड़कर बाँध दिये थे; किन्तु दशरथ जी ने छुड़ा दिया था और वही मेघनाद आज लक्ष्मण को मारने वाला हुआ है। अतः श्रीरामजी यह सोचते हैं कि यदि मैं उस समय पिता की उक्त आज्ञा को नहीं

गया-श्राद्ध

ऐतिहासिक तथा पौराणिक ग्रन्थों के अध्ययन से यह सिद्ध है कि चार धामों से प्रधान पञ्चम धाम गया है। यह गया धाम आस्तिकों के लिए मुक्तिधाम है। कोई भी व्यक्ति कहीं भी किसी प्रकार भी मर जाता है तब उसके निमित्त गयाधाम में पिण्डदान तथा फल्गु के जल से तर्पण करने पर मृतात्मा की मुक्ति अवश्य हो जाती है। ऋग्वेद, वामन, वाराह, कूर्म, वायु, पद्म गरुड़ आदि पूराणों, याज्ञवल्क्य, वसिष्ट आदि स्मृतियों रामायण, महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थों में मोक्षस्थल के रूप में गया धाम का वर्णन किया गया है।

श्रीराम ने राजा गय के उपदेश को दुहराते हुए कहा है कि पुत् नामक नरक से पिता को उद्धार करने के कारण पुत्र कहा जाता है। वही पुत्र है जो पितारों की सब प्रकार से रक्षा करता है।

पुन्नाम्नो नरकात् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितृन् यः पाति सर्वतः ।।

(२।१०७।२)

पुनः श्रीराम ने कहा कि बहुत गुणवान और बहुश्रुत पुत्रों की इच्छा करनी चाहिए। उन पुत्रों में से कोई एक पुत्र भी गया का यात्रा करे अर्थात् कोई पुत्र भी गया में पितरों के निमित्त पिण्ड दान और तर्पण कर दे तो उससे पितर मुक्त हो जाते हैं।

एष्टव्या बहवः पुत्राः गुणवन्तो बहुश्रुताः ।
तेषां वै समवेतानामपि कश्चित् गयां व्रजेत् ।।

इस वचन से सिद्ध है गया श्राद्ध करने में सभी पुत्रों का अधिकार है। कोई भी पुत्र गयाधाम में पितरों के निमित्त पिण्डदान और तर्पण कर देता है तो पितर मुक्त हो जाते हैं। गया श्राद्ध में बड़ा छोटा का भेद नहीं है।

अयोध्या में मरने वाले श्रीराजा दशरथ के निमित्त पिण्ड देने श्रीराम सीता और लक्ष्मण के साथ गयाधाम में आये थे। श्रीराम जी सीताजी को फल्गु किनारे बैठाकर अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ बाजार से पिण्ड के सामान लाने गये। इसी बीच आकाशवाणी हुई कि पिण्ड का शुभ मुहूर्त्त निकला जा रहा है। मुझे शीघ्र पिण्डदान करो। छाया रूप में उपस्थित होकर महाराज दशरथ ने कहा पुत्रि! समय टलता जा रहा है, अतः शीघ्र मुझे पिण्डदान कर दो। अन्यथा अतृप्त रह जाऊँगा। सीताजी ने कहा पिताजी! श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई बाजार से पिण्डदान की सामग्री लाने गये हैं, वे शीघ्र आते होंगे। पुनः राजा दशरथ ने सीता को मुहूर्त्त का स्मरण कराया। सीताजी उनके वचन से विवश होकर पीपलवृक्ष, गाय, केतकी, ब्राह्मण और महानदी फल्गू इन पाँचों को साक्षी रखकर बालू का पिण्ड बनाकर श्रीदशरथजी के लिए दे दिया। जब श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण के साथ बाजार से लौटे तो सीताजी ने उनसे पिताजी के निमित्त पिण्डदान कर देने की बात कही। सीताजी के कथन पर दोनों भाईयों को विश्वास नहीं हुआ। सीताजी ने पीपल आदि पाँचों को साक्षी से उसकी परिपुष्टि के लिए कहा। उनमें केवल पीपल ने पिण्ड दान की पुष्टि की शेष चार ने पिण्डदान का समर्थन नहीं किया। माता सीता ने पीपल वृक्ष को चिरञ्जीवी होने का वरदान दिया और अन्य चारों को शाप दे दिया। गाय को विष्ठा खाने का, केतकी को निर्मूल हो जाने का, गया वाले ब्राह्मणों को दरिद्र होने का और महानदी फल्गु को सूख जाने का शाप दिया। फल्गु ने सीताजी के चरणों में गिरकर शाप से मुक्त कर देने का आग्रह किया। वात्सल्य

भक्तिप्रिया शबरी

उभय विभूति नायक अनन्त कल्याण गुणनिधि भगवान श्रीमन्नारायण सौशील्य एवं सौलभ्य गुण के कारण भूतल पर अवतरित होते हैं। देवताओं तथा ऋषियों के लिए दुर्लभ भगवान श्रीराम ने जाति आश्रम से हीन शबरी से मिलकर सौलभ्य और सौशील्य गुण का परिचय दिया है।

शबरी एक शवरजाति की कन्या थी। जब वह विवाह के योग्य हो गयी तब पिता ने उसके विवाह का निश्चय कर दिया और वैवाहिक अवसर पर सम्बन्धियों को माँस का भोजन कराने के लिए उसने जङ्गली पशुओं को पकड़ लाया। विवाह से पूर्व जङ्गली पशुओं ने (जो बन्धे हुए थे) शबरी की ओर दीनभाव से देखा। शबरी ने अपनी माँ से पूछा कि ये पशु किसलिए बन्धे हैं। माता ने उत्तर दिया बेटी! तुम्हारे विवाह के अवसर पर आये हुए सम्बन्धियों को इन्हीं पशुओं के मांस का भोजन कराया जाएगा। शबरी के हृदय में कम्पन हो गया। वह विचार करने लगी कि मेरे विवाह में इन पशुओं की हिंसा अच्छा नहीं है; क्योंकि परमात्मा ने सभी प्राणियों को बनाया है। दु:ख-सुख सबों को समान रूप में होता है, ऐसा सोंचकर उसने आधी रात में सब पशुओं को खोलकर भगा दिया और स्वयं भी वहाँ से भाग चली। वह तेजी से चलकर पम्पा सरोवर के पास मतङ्ग मुनि के आश्रम पर आ गयी। निष्काम सेवा तथा शुद्ध प्रेम को देखकर महात्मा मतङ्ग ने उसे अपने आश्रम पर रहकर भजन करने का आदेश दे दिया। जब मतङ्ग मुनि वैकुण्ठ जाने लगे तो शबरी ने भी साथ चलने के लिए प्रार्थना की। महर्षि मतङ्ग ने कहा कि तुम साथ नहीं चलो। भगवान श्रीराम चित्रकूट में पहुँच गये हैं। वे यहाँ आवेंगे। तुम उन्हें विधिवत् सेवा से सन्तुष्ट कर देना। तत्पश्चात् तुम वैकुण्ठ की यात्रा करना।

सीता अन्वेषण काल में भगवान श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ शबरी के आश्रम पर पहुँचे। शबरी प्रभु के दर्शन करते ही अत्यन्त हर्ष से उठकर खड़ी हो गयी। उसके नेत्रों में आनन्दाश्रु भर गये। वह भगवान के चरण कमलों में गिर पड़ी। उसने दोनों भाइयों को आसन पर बैठाया और उनके चरणों को धोकर चरणोदक लिया। तदनन्तर शबरी ने अर्घ्यादि से विधिवत पूजन कर पूर्व से संग्रहीत अमृतमय दिव्य फलों को भक्तिपूर्वक समर्पण किया, प्रभु ने उसे प्रेमपूर्वक भोग लगया। तदनन्तर शबरी ने भगवान से कहा—

तवाहं चक्षुषा सौम्य पूता सौम्येन मानद ।
गमिष्याम्यक्षयाल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ।।

(वा० ३/७४/१३)

भगवान आपकी सौम्य दृष्टि पड़ने से मैं परम पवित्र हो गयी आपके प्रसाद से ही अब मैं अक्षय लोकों को जाऊँगी। शबरी द्वारा अनन्य भाव से भगवान की पूजा करने के कारण ही महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है—

शबर्या पूजितः सम्यग् रामो दशरथात्मजः ।

शबरी ने जो फल भगवान श्रीराम को खिलाया है उसके सम्बन्ध में दो पक्ष है। प्रथम पक्ष है शबरी पहले से ही वृक्षों के फलों को खाकर उसके माधूर्य को निर्णय कर चूकी थी। वह फल सुस्वादु एवं मधुर था फलों को संग्रह करके प्रभु के लिए रखी थी। उन्हें प्रभु भोग लगाये थे। 'तत्तत्फल जातीय माधुर्य परीक्ष्य स्थापितमिति'। इस पक्ष का समर्थन महर्षि वाल्मीकि आदि ने किया है। दूसरा पक्ष है कि जिह्वा से चखकर शबरी ने फल श्रीराम को दिया था। इसका समर्थन पद्मपुराण से मिलता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी प्रथम पक्ष का ही समर्थन किया है—

मोहरूप ग्राह से बचें

विश्व में सारे प्राणी माया के बन्धन में पड़े हुए हैं। नारी, पुत्र और धन की तृष्णा से सब लोग नाच रहे हैं, इनकी पूर्ति सृष्टि के आरम्भ से आज तक किसी की नहीं हुई।

विषयी साधक सिद्ध सयाने।
त्रिविध जीव जग वेद बखाने।।

विषयी जीव ही त्रिविध तृष्णा से परेशान हो रहा है। साधक और सिद्ध जीवों को तृष्णा परेशान नहीं करती है। साधक का अर्थ है–आरुरुक्षु। जो आत्मदर्शन तथा ब्रह्मदर्शन की ओर बढ़ रहा हो वह आरुरुक्षु होता है और जिसने आत्मा तथा परमात्मा का दर्शन कर लिया है उसे आरूढ़ कहते हैं।

आरुरुक्षु और आरूढ़ की संख्या बहुत कम है विशेष विषयी जीव ही दृष्टिगत हो रहे हैं। विषयी जीव की हृदय को मोहरूप ग्राह ग्रसे हुए है। अत एव मानव सर्वविध उपाय करने पर भी सुखी नहीं बन पाता। मोह का काम है अनेक प्रकार का दु:ख देना।

मोह सकल व्याधीनकर मूला।
तीन ते पुनि उपजइ बहुसूला।।

जो मानव इस लोक से परलोक तक सुख प्राप्त करना चाहता है उसे मोहरूप ग्राह से बचने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यह शिक्षा गज ग्राह युद्ध प्रसङ्ग से प्राप्त होती है। गजेन्द्र का पैर ग्राह पकड़ लिया था उसने अनेक प्रकार से अपने को ग्राह के मुख से छुड़ाने का प्रयत्न किया; परन्तु ग्राह उसे नहीं छोड़ सका। उसे मृत्यु निकट सुझने लगी। तब उसने जन्मान्तरीय संस्कारवश परमतत्त्व नारायण का दिव्य गुणों द्वारा स्तवन किया। वह संसार की ओर से निराश होकर नारायण की स्तुति कर रहा था। सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान परम दयालु नारायण ने उसकी आर्त्त पुकार सुनकर गजेन्द्र के पास पहुँच गये। गजेन्द्र ने **'नारायणाखिल गुरो-भगवन्नमस्ते'** ऐसा कहकर कमल का पुष्प नारायण के चरणों में समर्पण किया। भगवान गजेन्द्र को स्थल पर खींच लिये और ग्राह को मार डाले। गजेन्द्र प्रभु के कृपा दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ और सबल हो गया; परन्तु गजेन्द्र को शरीर रखना स्वीकार नहीं हुआ। जगन्नियन्ता भगवान श्रीमन्नाराण उसके आन्तरिक भाव को समझकर अपना पार्षद बना लिए।

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात्।
प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः।।

गजेन्द्र का पैर ग्राह ने पकड़ लिया था और उससे छुटकारा पाने के लिए वह नारायण का शरणागत हो गया। नारायण ने ग्राह को मारकर गजेन्द्र का उद्धार कर दिया था। उसी प्रकार मोहरूप ग्राह से ग्रस्त मानव भगवान नारायण के शुद्ध भाव से भजन, कीर्तन एवं स्मरण करे। नारायण उसकी आर्त्तपुकार पर मोहरूप ग्राह को मारकर उसका उद्धार कर देंगे। अभी तक जिन लोगों ने शुद्ध भाव से भगवान नारायण के चरणों की उपासना किया है, भगवान ने उन्हें मोह से बचाकर उद्धार कर दिया। मोह एक पाँका है। उसे अज्ञान भी कहते हैं। वह जब तक हृदय में रहता है तब तक मोक्ष परक शास्त्रों पर विश्वास नहीं होता। सच्चे सन्तों के सदुपदेश से मोहरूप अज्ञान को दूर करने के लिए मानव नारायण की उपासना करता है, नारायण ने उसे स्वयं स्वीकार किया है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

शेष पृ० १९ पर

मानव शरीर से उत्पन्न पाप-समूहों से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

इसका भाव यह है कि समस्त पाप कर्मों का परित्यागकर केवल तिलक को ही निष्ठापूर्वक धारण करते रहें तो सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। उसे पाप-नाश के लिए दूसरे उपाय (प्रायश्चित आदि) करने की जरुरत नहीं होती है। पर साथ-साथ यह भी स्मरण रहे कि तिलक लगाकर पाप कर्मों का आचरण न करे। मानव जीवन की सफलता परमानन्द की उपलब्धि में होती है। उसकी उपलब्धि में भक्ति का स्थान सर्वप्रथम माना गया है। भक्ति कहीं नव प्रकार की और कहीं सोलह प्रकार की बतलायी गयी है। पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में सोलह प्रकार की शक्ति का उल्लेख किया गया है। जिनमें द्वितीय भक्ति ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण ही है।

वैज्ञानिक दृष्टि से—

वैज्ञानिक दृष्टि से ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक की विशेष उपयोगिता सिद्ध है। हृदय में एक सौ एक नाड़ियाँ हैं। उनमें सर्व प्रधान सुषुम्ना नाम की नाड़ी मस्तक-प्रदेश के सामने से निकलती है। उसके द्वारा प्रस्थान करने वाला मोक्ष प्राप्त करता है। शेष सबका प्राणोत्सर्ग के समय चारों ओर से उपयोग होता है।

वैदिक मन्त्र से सुस्पष्ट है कि सुषुम्णा नाड़ी हृदय से सीधे मस्तक के सामने ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है। ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक उसी स्थान पर लगाते हैं। मस्तक को शीतल रखने की लिए तथा ऊर्ध्वगति का सङ्केत चिह्न के रूप में तिलक लगाना चाहिए। हमारे ज्ञानतन्तुओं का विचारक केन्द्र भृकुटि और ललाट का मध्य भाग है। यह सभी का अनुभव है कि किसी विषय में अधिक विचार करने पर इसी केन्द्र में वेदना का अनुभव होने लगता है। हमारा मस्तिष्क जितना विकार रहित रहता है, उतना ही हम प्रत्येक बात की वास्तविकता का शुद्ध परिशीलन कर पाते हैं। अत एव हमारे महर्षियों ने ज्ञान तन्तुओं के केन्द्र स्थान में ही तिलक धारण करने का विधान किया है। जिन्हें तिलक की महिमा पर विश्वास नहीं है वे लोग भी जब मस्तिष्क वेदना से पीड़ित होते हैं तो मलयगिरि चन्दन घीसकर सिर पर लेप करते हैं। मलयगिरि चन्दन, गोपी चन्दन, वेलमूल तथा भस्म आदि से भी तिलक लगाया जाता है; परन्तु तीर्थों की पवित्र मृतिका को स्वच्छ करके जो चन्दन तैयार किया जाता है वह सात्त्विक तथा पूर्वोक्त शैत्य आदि अनेक वैज्ञानिक लाभों से परिपूर्ण हाता है।

शुद्ध मृत्तिका में सर्वविध सङ्क्रामक कीटाणुओं के विनाश की अद्भुत शक्ति है, इसे सभी भौतिक विज्ञानवादी स्वीकार करते हैं। तीर्थों की मृत्तिका में पवित्रता भी अवश्य ही रहती है। अत एव अपने मस्तिष्क को पवित्र करने के लिए भी श्वेत मृत्तिका का तिलक लगाते हैं। इसीलिए 'ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदाधार्यम्' कहकर श्वेत मृतिका की प्राथमिकता दी गयी है। बीच में हल्दी का चूर्ण लगाते हैं। हल्दी चूर्ण नींबू के रस तथा सोहागा मिलाने से लाल होता है जिसे श्रीचूर्ण कहते हैं। हल्दी स्नायुओं को सुदृढ़ रखने के लिए तथा त्वचा शोधन के लिए सर्वोत्तम पदार्थ है। आयुर्वेद में इसके अनेक गुण लिखे हैं। दाल शाक में इसे पीले बनाने के लिए नहीं देते हैं; क्योंकि दूध, खीर आदि अनेक भक्ष्य (भोज्य) पदार्थ श्वेत रङ्ग के ही उपयोग में आते हैं। दाल एवं सब्जी आदि में हल्दी का उपयोग उसके संयोजक एवं रक्तशोधक गुण के कारण ही होता है। अतएव वैज्ञानिक दृष्टिकोण से त्वचा को शुद्ध और मस्तिष्क स्नायुओं का संयोग के लिए मध्य में हल्दी चूर्ण धारण का विधान है।

हनुमान जी ने रावण, सीता का हरणकर जहाँ रखे हुए था उसे पता लगाने के लिए देवचारण जिस मार्ग से जाते हैं, उस आकाशमार्ग से जाने का विचार किया।

ततो रावणनीतायाः सीतायाः शत्रुकर्षणः ।
इयेष पदमन्वेष्टुं चारणाचरिते पथि ।।

हनुमान जी अज्ञान निवर्तक सच्चे गुरु हैं। ये लङ्का में रावण को सदाचार का उपदेश देने जा रहे हैं। सीता का अन्वेषण तो निमित्त मात्र है। अत एव 'चारणाचरिते पथि' की व्याख्या करते हुए श्रीगोविन्दराज जी ने लिखा है कि 'चारयन्ति आचारयन्ति धर्मानिति चारणाः पूर्वाचार्याः तैराचरिते पथि स्थिता' अर्थात् पूर्वाचार्य के सदाचार मार्ग पर हनुमान जी स्थित होकर लङ्का की ओर चल दिये।

●

पृ० १५ का शेष

मानव किसी प्रकार के दुःख में पड़ा हो, अगर वह नारायण का स्मरण कर लेता है तो उसके सारे दुःख नष्ट हो जाते हैं।

आर्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीताः घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।
सङ्कीर्त्य नारायण शब्दमात्रं विमुक्त दुःखाः सुखिनो भवन्ति ।।

पुनपुन नामकरण में कारण

पुनपुन आदि गंगा नाम से प्रसिद्ध थी। उसके पास पुनपुनिया नाम की एक वेश्या रहती थी। वह वेश्या एक दिन सन्ध्या समय स्नान करके घर लौट रही थी। मार्ग में भगवद्कथा हो रही थी। वह वेश्या कथा सुनने लगी। कथा समाप्त होने पर वह कथा वाचक से हाथ जोड़कर पूछी कि मैंने जीवन में अनेकों पाप किया है, मुझे मुक्ति कैसे मिलेगी? कथावाचक ने कहा कि तुम जितना पाप में लिप्त ही है उतना ही भगवान में लिप्त हो जाओ। वेश्या कथा वाचक की बात सुनकर उसी जगह आसन लगाकर तपस्या में लग गयी। उसके कठिन तप से २२ वर्ष में भगवान विष्णु उसके पास प्रकट होकर बोले कि मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम वरदान माँगो।

व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है और जो उक्त मूल्यों को अपने चरित्र में जितना अधिक विकास करता है उसका व्यक्तित्व उतना ही यशस्वी बनकर संसार के सामने समुपस्थित होता है और आगे चलकर वह समाज तथा राष्ट्र एवं विश्व के लिए भी उदाहरण बन जाता है।

व्यक्ति-मूल्य के अतिरिक्त कुछ समाजगत मूल्य और उपजे दोष जैसे गरीबी-अमीरी, लिंग-भेद, छुआ छूत, भ्रूण-हत्या, दहेज, भ्रष्टाचार, शोषण, अधिकार, हिंसा, आतंक, समता, भाईचारा इत्यादि। व्यक्ति के साथ ही साथ ये समाज के चरित्र में भी विद्यमान हैं, यद्यपि इनका भी मूल व्यक्ति ही है; किन्तु इन्होंने अपना विकास कर समाज के चरित्र को भी आच्छादित कर लिया है, इसमें कुछ तो अच्छे हैं, पर अधिकांशत: बुरे। प्रत्येक मूल्य का कुछ न कुछ महत्त्व होता है किन्तु समाज के लोगों द्वारा जब वे विकृत कर दिये जाते हैं तब उसका अवमूल्यन होने लगता है।

स्वतन्त्रता, समानता, न्याय, बन्धुत्व इत्यादि को राष्ट्रीय अर्थात् 'राष्ट्र-मूल्य' कहा जा सकता है; क्योंकि ये मूल्य राष्ट्र के राजा के द्वारा विधारित मूल्य होते हैं, जिनका आचरण और अनुपालन कर राष्ट्र के सभी नागरिक अपना विकास करते हैं तथा सुख-समृद्धि, भाईचारे के साथ ही साथ सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में जीवन जीते हैं। इन मूल्यों के प्रभाव को स्थाई और अनिवार्य बनाने के लिए इन्हें संविधान में भी संरक्षित कर दिया जाता है और जो राष्ट्र उचित तरीके से इन्हें अपने आचरण में उतारता है उसके नागरिकों में कभी असन्तोष का ज्वालामुखी नहीं फूटता।

व्यक्ति, समाज और राष्ट्र से ऊपर उठकर 'विश्व-मूल्य' उन्हें कहते हैं जिनके अनुपालन में सम्पूर्ण विश्व का कल्याण निहित होता है। हम कभी सुखी नहीं रह सकते यदि हमारे पड़ोस में आग लगी हो। सत्य, अहिंसा, दया, उपकार, परस्पर सहयोग, गरीब राष्ट्रों को सहायता, सुख-सुविधा के साधनों का आदान-प्रदान, अन्तरिक्ष, नदियाँ, पर्वत, वृक्ष, जंगल, जीव-जन्तु समुद्र, ओजोन आदि की रक्षा में सहयोग एवं सहभागिता करना सभी राष्ट्रों का दायित्व बनता है। इसी के साथ ही साथ, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, विश्व स्तर की महामारियों कैंसर तथा एड्स जैसे भयङ्कर एवं खतरनाक रोगों से समस्त मानव जाति की रक्षा, पर्यावरण-संतुलन, शक्ति-संतुलन अर्थात् अमीरी-गरीबी की खाई को कम करके निर्धन राष्ट्रों को भी विकास की मुख्य धारा के साथ जोड़ना सभी राष्ट्रों का दायित्व बनता है। तभी हम एक समृद्ध और समुन्नत विश्व की कल्पना कर सकते हैं। भारतीय मनीषा ने तो अपने ऊष: काल से ही इसे स्वीकार और आचरित किया है। यथा—

विश्वानिदेव सवितुर्दुरितानि परासुव यद्भद्रं तन्न आसुव।

(ऋग्वेद)

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत्।।

(यजुर्वेद शान्तिपाठ)

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। (पञ्चतन्त्र)

मूल्य अमूर्त्त होते हैं, आचरण में आचरित होने से ही वे मूर्त्तरूप ग्रहण करते हैं और लोगों को अपने होने का बोध कराते हैं। मूल्य का आचरण करने वाला नैतिक कहलाता है। इस दृष्टि से मूल्य-विभाजन की भाँति हम नैतिकता का भी विभाजन चार प्रकार से उसी क्रम में कर सकते हैं, यथा— १. व्यक्ति-नैतिकता, २. समाज-नैतिकता, ३. राष्ट्र-नैतिकता और ४. विश्व-नैतिकता।

व्यक्ति-नैतिकता—व्यक्ति-मूल्यों को अभिधारण करने वाला आचरण व्यक्ति-नैतिकता कहलाता है। अधिकार, कर्त्तव्य और दायित्वबोध के साथ जो व्यक्ति इन नैतिक मूल्यों, जिनकी ऊपर चर्चा की

भूमि-विचार

मानव जिस भूमि में मकान बनाना चाहता हो उस भूमि का संशोधन करके मकान बनाना चाहिए। भूमि के गुण-दोष का प्रभाव गृहस्वामी पर पड़ता है। मधुरगन्ध एवं रस वाले पृथ्वी पर बना मकान गृहस्वामी के लिए हितकर होता है। कड़वी या तिक्त गन्ध और रस वाली पृथ्वी पर बना मकान स्वामी के लिए अहितकर होता है।

जिस भूमि पर वृक्ष, लतादि हरे-भरे रहते हों और फसल अच्छी होती हो, उस भूमि को जीवित भूमि समझना चाहिए। उस पर बना हुआ आवास लाभप्रद होता है। भूमि की परीक्षा निम्नप्रकार से की जाती है—

१. जिस भूमि पर मकान बनाना हो उसके बीचों-बीच एक हासथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गड्ढा खोदें। पुन: निकली हुई उसी मिट्टी से उसे गड्ढे को भर देवे, यदि गड्ढा भरने से मिट्टी बच जाए तो उत्तम, बराबर हो जाए तो सम और मिट्टी कम हो जाय तो निम्न स्तर की भूमि समझें और निम्न स्तर की भूमि पर मकान नहीं बनावें।

२. गृहस्वामी के हाथ से एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा और एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर पानी से लबालब भर देवें और सौ कदम तक जाकर लौट आवे। लौटने पर यदि चौथाई से कम जल बाकी रहे तो अनिष्ट, चौथाई से अधिक और आधे से कम जल बचे तो मध्यम और आधा से अधिक जल बचे तो उत्तम होता है।

३. उपयुक्त रीति से ही गड्ढा खोदकर सायंकाल उसमें भरपूर पानी भर दे और किसी वस्तु से ढक दे, जिससे रात्रि में कोई जीव-जन्तु पानी न पी सके। प्रात:काल उसे देखें, यदि जल बचा रहे तो उत्तम, कीचड़ रहे तो मध्यम और दरार फट जाय तो निम्न-स्तर की भूमि है, ऐसा समझना चाहिए।

पुन: भूमि चार प्रकार की होती है—गजपृष्ठ, कूर्मपृष्ठ, दैत्यपृष्ठ और नागपृष्ठ। दक्षिण, पश्चिम, नैर्ऋत्य और वायव्य कोण की ओर ऊँची भूमि को गजपृष्ठ कहते हैं। उस भूमि पर मकान बनाकर रहने से धन तथा आयु की वृद्धि होती है। बीच में ऊँची और चारों ओर नीची भूमि को कूर्मपृष्ठ कहते हैं। उस भूमि में वास करने से उत्साह, सौख्य तथा धन-धान्य का लाभ होता है। पूर्व, अग्नि तथा ईशान कोण में ऊँची तथा पश्चिम दिशा में नीची भूमि को दैत्यपृष्ठ कहते हैं। उस भूमि पर वास करने वाले को उच्चाटन मृत्यु, स्त्री, पुत्रादि की हानि तथा शत्रुओं की वृद्धि होती है। अत: गजपृष्ठ तथा कूर्मपृष्ठ भूमि में ही मकान बनावें।

●

पृ० ८ का शेष

वैसे ही मेरे पति भी मेरे वियोग में दु:खी होंगे। यज्ञादि कार्यों में पति-पत्नी दोनों का संयुक्त अधिकार होता है। वैदिक श्रुतियाँ भी पत्नी को पति का आधा अङ्ग बतलाती है। मुझे वध करने में मेरे पति को स्त्री की प्राप्ति हो जायेगी। संसार में ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में स्त्री दान से बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है। धर्म पर दृष्टि रखते हुए आप मुझे वाली को समर्पित कर देंगे तो दान के प्रभाव से मेरी हत्या का पाप आपको नहीं लगेगा। तारा के वचन सुनकर भगवान श्रीराम ने उसे विधाता का विधान बताकर धैर्यपूर्वक रहने का आदेश दिया।

●

वर्तमान तक बहुत कुछ समान अनुभव अर्जित किये हैं। इन अनुभवों से जिन संस्कारों का निर्माण हुआ है, जो वैचारिक दृष्टिकोण विकसित हुआ है, उन सबका द्योतन संस्कृति में होता है। इस संस्कृति की अभिव्यक्ति धर्म, वाङ्मय, विज्ञान-तकनीक, कला, राज व्यवस्था में स्पष्ट रूप से होती है। लौकिक एवं पारलौकिक स्तर पर, व्यक्ति एवं समष्टि के स्तर पर इस विशिष्टता का पूरी स्पष्टता के साथ अनुभव किया जा सकता है।

श्री अरविन्द ने संस्कृति के वैशिष्ट्य को रेखाङ्कित करते हुए कहा है—ज्ञान, विज्ञान, कला, चिन्तन और नैतिकता, दर्शन, धर्म ये मनुष्य के वास्तविक व्यापार हैं और उसी से संस्कृति रूप ग्रहण करती है। इसे भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में देखना होगा।

भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य उसकी परिष्कारवादी विधि में है। यह एक ऐसी सामूहिक जीवन प्रणाली है, जो प्रकृति प्रदत्त पदार्थों को निरन्तर संस्कारपूर्वक सर्वश्रेष्ठ रूप में प्राप्त करने का प्रयास करती है। इस सर्वश्रेष्ठता की पूर्णता एक ऐसे अखण्ड बोध की प्राप्ति है, जिसमें जगत की समस्त वस्तुएँ अङ्गाङ्गी भावपूर्वक मनुष्य और उसके समस्त व्यापार एक दूसरे के पुरक बन कर, अपनी सार्थकता प्राप्त करते हैं। भौतिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक, समस्त आयाम एक दूसरे के अविरोधपूर्वक सामञ्जस्य की प्राप्ति के लिये अपने व्यापारों को संस्कारित करने का जो प्रयास करते हैं, उसी का नाम भारतीय संस्कृति है। यह काल की एक ऐसी सनातन यात्रा है, जिसमें इतिहास की इयत्ता उसके मूल्यबोध अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। अर्थात् घटना से प्राप्त होने वाली शिक्षा या उपदेश अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रथमत: यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि भारतीय संस्कृति अत्यन्त आशावादी जीवन पद्धति है इसमें जीवन का उद्देश्य ही आनन्द की प्राप्ति है। तैत्तरीयोपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि 'कोई क्यों जीवित रहता, कोई क्यों सांस भी लेता यदि आनन्द न होता' अर्थात् जीवन पर्व है, उसको अनुष्ठित करने के लिए, ठीक से जीवन जीने के लिए, जो दत्त जीवन है, जिसमें मनुष्य एवं पशु के बीच कोई अन्तर नहीं है अर्थात् मौलिक आवश्यकताओं की दृष्टि से पशु एवं मनुष्य दोनों समान हैं, जिसमें सभी भोजन करते हैं, सोते हैं, भय होता है और यौन सुख की अभिलाषा होती है। इस समानता को तोड़कर मनुष्य को श्रेष्ठ बनाने के लिये संस्कारों की आवश्यकता होती है। यही संस्कार की प्रणाली धर्म के नाम से भी जानी जाती है। संस्कारित होना तथा संस्कारित करने की परम्परा को आगे बढ़ाना, सब तक पहुँचाना ही संस्कृति है।

इस व्यापक दृष्टिकोण पर विचार किया जाय तो भारतीय संस्कृति जीवन के समस्त आयामों में विस्तार प्राप्त करने वाली प्रणाली या जीवन विधि है। यह किसी निश्चित विशिष्टता से युक्त होने तथा धरती की शेष संस्कृतियों से अलग होने के कारण महत्त्वपूर्ण नहीं है। अपितु इसलिये महत्त्वपूर्ण है कि इस संस्कृति में युगानुकूल देशानुकूल परिवर्तनों को स्वीकार करते हुए अपनी नित्य जीवन दृष्टि या मूल्य प्रणाली को संरक्षित करने की क्षमता है। इसलिये भारतीय संस्कृति विश्वास संस्कृति है। काल के थपेड़ों के साथ इसमें क्षरण तो सम्भव है, किन्तु यह भर नहीं सकती, यह अमर संस्कृति है; क्योंकि यहाँ मान्यता है कि न तो राज्य अपेक्षित है न ही मोक्ष अभीष्ट है। अपेक्षा है, कामना है, तो मात्र इतनी कि कोई दु:खतप्त न रहे। अर्थात् दु:खी लोगों के कल्याण के लिये सब कुछ, यहाँ तक कि अपना जीवन भी समर्पित करने की कामना ही, प्रति क्षण संस्कार के परिष्कार का आदर्श है। इसको अत्यन्त सन्तुलित शब्दों में प्रस्तुत करते हुए प्रसिद्ध इतिहास-

यज्ञोपवीत संस्कार

—कौशल किशोर, स्नातक, द्वितीय वर्ष

महात्मा गॉधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

यज्ञोपवीत देखने में भले ही तीन धागों का सूत्र हो, लेकिन जनेऊ के तीन सूत्र हमें तीन ऋणों देव ऋण, गुरु ऋण और पितृ ऋण से उऋण होने की याद दिलाते हैं। उसे धारण करने से आध्यात्मिक लाभ के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक फायदे भी मिलते हैं। जनेऊ श्रेष्ठता और द्विजत्व का प्रतीक है इसको श्रद्धापूर्वक धारण करने वाले व्यक्ति को सदैव धार्मिक दायित्व की प्रेरणा मिलती रहती है। यह हमारे जीवन क्रम को व्यवस्थित रखने की याद दिलाता रहता है।

यज्ञोपवीत धारण करने से जीवन संयमित और अनुशासित हो जाता है। जिसके कारण स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को सामना नहीं करना पड़ता है। इस तरह यह सूत्र सेहत के लिए फायदेमन्द साबित होता है। यज्ञोपवीत को कान में चढ़ाने का प्रयोजन यह है कि मल-मूत्र की अशुद्धता का सूत्र से स्पर्श न हो।

यज्ञोपवीत कान में चढ़ाने से यह एक्यूप्रेशर की तरह काम करता है। चढ़ाने के बाद कान से जुड़ी नसें दबती हैं, जिससे अपान वायु पर असर पड़ता है।

माला में १०८ दानों का रहस्य

(कौशल किशोर, (बी०ए०) काशी विद्यापीठ, वाराणसी)

साधना के दौरान मन्त्र-जप की एक निश्चित संख्या का पूरा होना आवश्यक होता है। वैसे तो अङ्गुलियों के पोर, फूल, अक्षत के द्वारा भी जप गणना की जा सकती है। लेकिन लम्बे समय तक चलने वाले जप के लिए माला का उपयोग करना आवश्यक है। जप गणना के लिए उपयोग किए जाने वाली माला में १०८, ५४, २७ या १५ दानों का उपयोग किया जाता है। किन्तु अधिकतर जप के लिए १०८ दानों वाली माला का ही उपयोग किया जाता है।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार ब्रह्माण्ड स्थित नक्षत्रों की संख्या २७ होती है। प्रत्येक नक्षत्र के चार चरण होते हैं। इसलिए नक्षत्रों के सभी चरणों का स्पर्श करने के लिए १०८ बार जप करना चाहिए। इसके अलावा भारतीय आध्यात्म में नौ का अंक बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। ग्रहों की संख्या नौ है, नवरात्र के दिनों की संख्या भी नौ है। दुर्गा जी के नौ अवतार हैं। माला में १०८ दाने होने के मूल में नौ के अंक का पूज्य और प्रभावी होना तो है ही, जप संख्या के जिहाज से सुलभ और गणितीय सिद्धान्तों के आधार पर सर्वश्रेष्ठ होने के कारण माला में दानों की संख्या १०८ तय की गई है।